myresearchgo

myresearchgo Volume 2, Issue 4, April 2026, ISSN: 3107-3816 (Online)

शीर्षक: वैदिक ज्ञानपरंपरा में स्त्री-वाणी का मनोविश्लेषणात्मक पुनर्पाठ (भारतीय ज्ञान प्रणाली तथा आधुनिक नारीवादी मनोविमर्श के आलोक में एक अध्ययन)

Author Name: Dr. Anjali Shah

Designation: Assistant Professor

Name Of College: Department of Gujarati. S.N.D.T. Women's University, Mumbai 20.

Email ID: anjali79vshah@gmail.com

सारांश **(Abstract) :**आधुनिक नारीवादी मनोविश्लेषणात्मक विमर्श में स्त्री की वाणी, उसकी अभिव्यक्ति तथा उसकी आत्म-चेतना के प्रश्न को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। मनोविश्लेषणात्मक परंपरा में यह प्रतिपादित किया गया है कि भाषा और प्रतीकात्मक संरचनाएँ मानव-अस्तित्व के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं, किंतु ये संरचनाएँ प्रायः पुरुष-प्रधान सांस्कृतिक चेतना से निर्मित होने के कारण स्त्री-अनुभव की अभिव्यक्ति को सीमित कर देती हैं। इसके विपरीत वैदिक ज्ञानपरंपरा में वाणी को मात्र भाषिक संप्रेषण न मानकर अनुभूति, चेतना और सत्य के प्रकटीकरण का माध्यम स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System – IKS) के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-वाणी की अवधारणा का मनोविश्लेषणात्मक पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है तथा उसे आधुनिक नारीवादी मनोविमर्श के साथ संवादात्मक रूप में स्थापित करता है। ल्यूसे इरिगरे, स्टेफ़नी डब्ल्यू. जैमिसन तथा अन्य आधुनिक विद्वानों के विचारों के आलोक में यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि वैदिक परंपरा में स्त्री की वाणी न तो दमन का मौन है और न ही केवल प्रतिरोध का राजनीतिक स्वर, बल्कि वह आंतरिक अनुभूति, आत्म-अभिव्यक्ति और ज्ञानानुभव की सहभागी अभिव्यक्ति है। इस प्रकार यह अध्ययन स्त्री-सशक्तिकरण को सामाजिक स्वातंत्र्य से आगे बढ़ाकर मनोवैज्ञानिक स्वीकृति, आत्मबोध तथा ज्ञान-प्रकटीकरण की प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द (Key Words) : स्त्री-वाणी, मनोविश्लेषण, वैदिक ज्ञानपरंपरा, भारतीय ज्ञान प्रणाली, नारीवादी मनोविमर्श, आत्म-अभिव्यक्ति, सशक्तिकरण

प्रस्ताविक भूमिका

मानव समाज के बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास में स्त्री के स्थान और उसकी वाणी का प्रश्न सदैव महत्वपूर्ण रहा है। आधुनिक नारीवादी, विशेषतः मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि भाषा और सामाजिक संरचनाएँ स्त्री की पहचान और आत्मबोध को निर्मित करती हैं, तथा उसका मौन केवल सामाजिक दमन नहीं, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से भी जुड़ा होता है। पाश्चात्य ज्ञान परंपरा में पुरुषकेंद्रित दृष्टि के कारण स्त्री को प्रायः गौण या "अन्य" के रूप में देखा गया, जिससे उसके स्वतंत्र अनुभवों की उपेक्षा हुई। समानता के विमर्श में भी अनेक बार स्त्री को पुरुष के मानदंडों के अनुसार समझने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जिसके कारण स्त्री के स्वतंत्र अनुभव और स्त्रीत्व के विशिष्ट आयामों की उपेक्षा होती है।

इसके विपरीत वैदिक परंपरा स्त्री को ज्ञान-प्रक्रिया की सक्रिय सहभागी के रूप में स्वीकार करती है, जहाँ वह ज्ञान की सह-सर्जक और वाणी की अधिकारी के रूप में उपस्थित है। इस प्रकार आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक नारीवाद और वैदिक दृष्टि के तुलनात्मक अध्ययन से स्त्री की वाणी, पहचान और चेतना को अधिक व्यापक और संतुलित रूप में समझने की संभावना उत्पन्न होती है।

मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि और स्त्री-वाणी का प्रश्न:

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पाश्चात्य दर्शन, मनोविश्लेषण तथा नारीवादी चिंतन में स्त्री, स्त्री-अस्तित्व (Being), लैंगिकता और भाषा से संबंधित प्रश्न केंद्र में आए। विचार-विमर्श में यह प्रश्न उठे कि स्त्री का सामाजिक निर्माण किस प्रकार होता है, समाज में उसका स्थान क्या है, क्या उसे स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकार किया जाता है, तथा क्या उसे बोलने और अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त करने की समान स्वतंत्रता उपलब्ध है। इन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में नारी मुक्ति और नारी सशक्तिकरण संबंधी चर्चाएँ आगे बढ़ती गईं।

मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा में भाषा को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। लाकाँ के अनुसार मनुष्य का अस्तित्व भाषा के माध्यम से निर्मित होता है और व्यक्ति तभी "विषय" के रूप में स्थापित होता है जब वह भाषा और समाज की प्रतीकात्मक व्यवस्था में प्रवेश करता है। इस दृष्टि से भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं है, बल्कि व्यक्ति की पहचान, आत्मबोध और सामाजिक स्वीकृति से जुड़ी हुई प्रक्रिया बन जाती है। व्यक्ति अपनी पहचान स्थापित करने और समाज में अपनी उपस्थिति व्यक्त करने के लिए भाषा का ही आधार ग्रहण करता है।

नारी मनोविश्लेषणात्मक विचारकों जैसे सिमोन द बोउवार, लूस इरिगरे, जूलिया क्रिस्तेवा आदि के अनुसार भाषा, विचार और ज्ञान की संरचना ऐतिहासिक रूप से पुरुषकेंद्रित रही है। परिणामस्वरूप स्त्री को अपनी स्वतंत्र भाषा प्राप्त नहीं होती; उसके अनुभव और भावनाएँ भी अनेक बार पुरुषप्रधान भाषिक संरचना के भीतर ही व्यक्त होने के लिए बाध्य होती हैं। आधुनिक समाज में "Good Woman", "Ideal Wife" अथवा "Angel in the House" जैसी अवधारणाएँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं। ऐसे शब्दप्रयोग स्त्री को सहनशील, शांत, त्यागमयी और आज्ञाकारी रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह भाषा केवल वर्णन नहीं करती, बल्कि स्त्रियों के लिए स्वीकार्य आचरण के मानदंड भी निर्धारित करती है।

परिणामस्वरूप अनेक स्त्रियाँ अपनी इच्छा, असहमति अथवा विरोध व्यक्त करने के स्थान पर सहनशीलता और समन्वय को ही अपनी पहचान का अंग मानने लगती हैं। मनोविश्लेषणात्मक नारीवादियों के अनुसार यहाँ प्रश्न केवल शब्दों के प्रयोग का नहीं, बल्कि भाषा द्वारा निर्मित अर्थों और प्रतीकों का है। जब सामाजिक भाषा पुरुष के अनुभव को केंद्र में रखकर निर्मित होती है, तब स्त्री अपनी अनुभूतियों और भावनाओं को व्यक्त करते समय भी उसी संरचना का उपयोग करती है। इस प्रक्रिया में उसकी पहचान और आत्मबोध भी उसी प्रतीकात्मक व्यवस्था के भीतर निर्मित होते जाते हैं।

मनोविश्लेषणात्मक नारीवाद भाषा और प्रतीकात्मक व्यवस्थाओं में निहित पुरुषकेंद्रित संरचनाओं को उजागर करते हुए स्त्री के मौन और उसकी सीमित अभिव्यक्ति के प्रश्न को समझने का प्रयास करता है। तथापि इस चर्चा के साथ एक महत्वपूर्ण प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि क्या प्रत्येक ज्ञान परंपरा में स्त्री की वाणी समान रूप से सीमित रही है, अथवा ऐसे दार्शनिक और सांस्कृतिक संदर्भ भी उपलब्ध हैं जहाँ स्त्री को ज्ञान की सह-सर्जक और वाणी की अधिकारी के रूप में स्वीकार किया गया है।

इस संदर्भ में भारतीय वैदिक परंपरा एक महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र के रूप में सामने आती है। वैदिक साहित्य में ऋषिकाओं की उपस्थिति तथा उनके द्वारा रचित स्तोत्र यह संकेत करते हैं कि स्त्री केवल श्रोता या अनुयायी के रूप में ही नहीं, बल्कि आत्मज्ञान और सत्य के अनुभव को व्यक्त करने वाली स्वतंत्र वाणी के रूप में भी प्रकट होती है। यहाँ स्त्री की वाणी को मौन या गौण न मानकर ज्ञान प्रक्रिया का अभिन्न अंग स्वीकार किया गया है। अतः आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि और वैदिक परंपरा के इस परिप्रेक्ष्य के मध्य तुलनात्मक संवाद स्थापित करने से स्त्री की भाषा, पहचान और चेतना के प्रश्नों को अधिक विस्तृत रूप में समझने की संभावना उत्पन्न होती है।

myresearchgo Volume 2, Issue 4, April 2026, ISSN: 3107-3816 (Online)

वैदिक ज्ञानप्रणाली में स्त्री की सहभागिता:

वैदिक काल में वाणी की स्वतंत्रता तथा ज्ञान-प्रक्रिया में स्त्री की सहभागिता के कारण स्त्री का मानसिक और सामाजिक निर्माण विशिष्ट स्वरूप धारण करता हुआ दिखाई देता है। जब व्यक्ति को अपनी अनुभूति, विचार और ज्ञान को व्यक्त करने की मान्यता प्राप्त होती है, तब उसकी चेतना सीमित नहीं रहती, बल्कि सृजनात्मक और सहभागी स्वरूप ग्रहण करती है। वैदिक संदर्भ में स्त्री को केवल गृहस्थ जीवन की परिधि में सीमित नहीं माना गया, बल्कि वह पारिवारिक, सामाजिक और दार्शनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय उपस्थिति रखती हुई दिखाई देती है।

उदाहरणस्वरूप ऋग्वेद में देवी सूक्त की रचयित्री ऋषिका वाक् अम्भृणी के स्तोत्र में ‘‘वाक्’’ स्वयं को सर्वव्यापी शक्ति के रूप में व्यक्त करती है। आत्मज्ञान और अमरत्व के प्रश्नों पर स्त्री के दार्शनिक स्वर को अभिव्यक्त करने वाली याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी, सूक्तों में व्यक्तिगत दुःख, आरोग्य, वैवाहिक सुख के लिए प्रार्थनात्मक भाव, तथा आध्यात्मिक आश्रय की अनुभूति व्यक्त करने वाली अपाला और घोषा काक्षीवती जैसी ऋषिकाएँ इसका उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। यहाँ स्त्री की वाणी आत्मज्ञान और सृष्टि-चेतना की अभिव्यक्ति बन जाती है। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाए तो जब व्यक्ति को अपनी अनुभूति व्यक्त करने की स्वीकृति प्राप्त होती है, तब उसकी पहचान दमित नहीं रहती, बल्कि स्वीकृत अस्तित्व के रूप में विकसित होती है। यह उदाहरण दर्शाता है कि स्त्री की वाणी ज्ञान के केंद्र में थी, इसलिए उनकी चेतना आत्मविश्वासपूर्ण और सक्रिय स्वरूप धारण करती है।

जो स्त्रियाँ आध्यात्मिक रूप से सक्रिय और सजग होती हैं, वे सामाजिक तथा सांस्कृतिक भूमिकाओं का सफलतापूर्वक निर्वाह करती हैं। मुद्गलानी, लोपामुद्रा, सूर्यपुत्री सावित्री, सत्यवती जाबाला, माता इतरा, पौलोमी आदि ऋषिकाओं के उदाहरण वैदिक परंपरा में स्त्री के अस्तित्व को किसी एक सामाजिक भूमिका तक सीमित न रखने वाले दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। उनके वचनों और जीवन प्रसंगों में गृहस्थ धर्म, संबंधों की नैतिकता, मातृत्व और दैनिक जीवन के मूल्यों के साथ-साथ आध्यात्मिक चेतना का भी समन्वय दिखाई देता है। गृहस्थ और आध्यात्मिक जीवन के मध्य संतुलन, दांपत्य में सहभागिता तथा धार्मिक प्रक्रियाओं में सक्रिय उपस्थिति उनके अस्तित्व को बहुआयामी बनाती है।

मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाए तो ऐसी स्वीकृति स्त्री की पहचान को संकुचित नहीं करती, बल्कि उसे विभिन्न अनुभव क्षेत्रों में अपनी पहचान स्थापित करने का अवसर प्रदान करती है। आधुनिक युग में अनेक बार स्त्री को माता, पत्नी अथवा प्रेमिका जैसी सीमित पहचानों में बाँध दिया जाता है और मातृत्व के माध्यम से उसके देह और अस्तित्व पर सामाजिक नियंत्रण स्थापित होता हुआ दिखाई देता है। इसके विपरीत वैदिक संदर्भ में स्त्री की पहचान केवल मातृत्व से संबद्ध नहीं मानी गई है।

वैदिक काल में पुत्री के जन्म को स्वीकार्यता प्राप्त थी; पुत्रियों का उपनयन संस्कार होता था, उन्हें शिक्षा दी जाती थी और वे वेदाध्ययन तथा धार्मिक क्रियाओं में सहभागी बनती थीं। पत्नी के रूप में उसे अर्धांगिनी का स्थान प्राप्त था और माता के रूप में भी सम्मानित स्थिति प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त कुछ स्त्रियाँ अविवाहित रह सकती थीं, कुछ परिस्थितियों में पति से पृथक होने अथवा विधवा पुनर्विवाह की संभावनाएँ भी विद्यमान थीं। राजनीतिक और युद्ध संबंधी क्षेत्रों में भी स्त्रियों की उपस्थिति के उल्लेख मिलते हैं।

वैदिक संदर्भ में स्त्री की पहचान केवल पुत्री, पत्नी, माता या प्रेमिका जैसी संबंध-आधारित भूमिकाओं तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह एक स्वतंत्र और समग्र स्त्री-चेतना से संपन्न अस्तित्व के रूप में स्वीकार की जाती थी। स्त्रीत्व की मान्यता किसी पुरुष की स्वीकृति या अनुमोदन पर निर्भर नहीं थी, अपितु उसे स्वयं में निहित स्वाभाविक और

स्वतंत्र सत्ता के रूप में समझा जाता था। इसी को लैंगिक समन्वयात्मक दृष्टिकोण कहा जा सकता है, जिसमें स्त्री और पुरुष के सह-अस्तित्व को समान रूप से स्वीकार किया जाता है तथा किसी को भी प्रधान या गौण के रूप में स्थापित नहीं किया जाता। इस दृष्टि में पारस्परिक सहयोग, परस्पर सम्मान और सह-अस्तित्व की भावना के आधार पर जीवन के विविध क्षेत्रों में दोनों की समान सहभागिता और सक्रिय उपस्थिति को मान्यता दी जाती है।

इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल की स्त्री केवल पारिवारिक संरचना तक सीमित नहीं थी। उसकी पहचान गृह, समाज और ज्ञान-प्रणाली तीनों स्तरों पर निर्मित होती थी। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस बहुआयामी सहभागिता ने स्त्री के मानस को दमित या एकरेखीय बनाने के स्थान पर समन्वयात्मक, आत्मस्वीकृत और विचारशील स्वरूप में विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वैदिक साहित्य में ऋषिकाओं की वाणी केवल धार्मिक स्तुति या भावात्मक अभिव्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि आत्मज्ञान और अस्तित्व के अनुभव की साक्षी के रूप में प्रकट होती है। उनके स्तोत्रों में व्यक्ति और ब्रह्म, प्रकृति और चेतना, तथा आत्म और विश्व के संबंधों पर गहन चिंतन दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार स्त्री की वाणी व्यक्तिगत सीमाओं का अतिक्रमण कर दार्शनिक और आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचती है। प्रजावत्सला रानी विश्पला, अन्न संरक्षिका आटिकी, नदी माता, दक्षिणाप्रजापत्या, अदिति, श्रद्धा कामायनी आदि ऋषिकाएँ सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हुए समाज के नैतिक आधार, संरक्षण, धैर्य और सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रतीक बनती हैं। संरक्षण, पोषण, दान, सामूहिक कल्याण और जीवन-धारण के मूल्य समाज में प्रतिष्ठित करती हैं। गार्गी, विश्ववारा आत्रेयी, रोमशा, अगस्त्यस्वसा आदि ऋषिकाएँ ब्रह्मज्ञान, आत्मस्वरूप, जीवन-मृत्यु और सत्य के प्रश्नों पर केवल विचार ही व्यक्त नहीं करतीं, बल्कि ज्ञानसभाओं में प्रश्न उपस्थित कर अपने ज्ञान का परिचय देते हुए ब्रह्मवादिनी के रूप में सम्मान प्राप्त करती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक संदर्भ में स्त्री की अभिव्यक्ति केवल सांस्कृतिक भूमिका तक सीमित नहीं थी, बल्कि ज्ञान के स्वरूप को समझने में भी सहभागी थी।

इस परिप्रेक्ष्य में वैदिक परंपरा स्त्री को मौन या "अन्य" के रूप में नहीं, बल्कि अनुभव के स्वतंत्र केंद्र के रूप में स्वीकार करती है। यहाँ स्त्री की वाणी सामाजिक स्वीकृति के लिए संघर्षरत नहीं है, बल्कि ज्ञान और सत्य के अनुभव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होती है।

पितृसत्तात्मक परिवर्तन - मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण:

वैदिक परंपरा में स्त्री को ज्ञान, वाणी और धार्मिक जीवन में प्राप्त सहभागिता समय के साथ सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिवर्तनों के कारण क्रमशः सीमित होती गई। स्त्री के कार्यों को गौण और पुरुष के कार्यों को प्रमुख मानने की प्रवृत्ति के साथ पितृसत्तात्मक विचारधारा सुदृढ़ हुई, जिसके परिणामस्वरूप स्त्री की भूमिकाएँ अधिक नियंत्रित होने लगीं। इस प्रक्रिया में स्त्री की स्वतंत्रता की अपेक्षा आज्ञाकारिता, सहनशीलता और संबंधनिष्ठा को अधिक महत्व दिया गया, जिससे पूर्वकालीन लैंगिक समन्वय की स्थिति धीरे-धीरे लैंगिक असमानता में परिवर्तित हो गई और स्त्री की सामाजिक स्थिति गौण होती चली गई।

मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि के अनुसार भाषा और अभिव्यक्ति व्यक्ति के आत्मबोध के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जब समाज में स्त्री के लिए बोलने और अपनी इच्छाएँ व्यक्त करने के अवसर सीमित हो जाते हैं, तब उसकी वाणी धीरे-धीरे मौन की ओर प्रवृत्त होने लगती है, जो अंततः उसके अचेतन मन में भी स्थिर हो जाता है।

परिणामस्वरूप स्त्री अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के स्थान पर संबंधों के संरक्षण और सामाजिक स्वीकृति को प्राथमिकता देने लगती है, जिससे उसकी पहचान स्वतंत्र विषय के रूप में विकसित होने के बजाय संबंध-आधारित भूमिकाओं में निर्मित होती है।

इस मानसिक परिवर्तन का प्रतिबिंब पौराणिक साहित्य के स्त्री पात्रों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सीता, उर्मिला, मंदोदरी, गांधारी, कुंती, भानुमति जैसे पात्रों में कर्तव्य, त्याग और सहनशीलता को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके जीवन में व्यक्तिगत इच्छाएँ और आंतरिक संघर्ष विद्यमान होने के बावजूद, वे अनेक बार सामाजिक और धार्मिक आदर्शों के अनुरूप स्वयं को संयमित करती हुई दिखाई देती हैं। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से ये पात्र उस मानसिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें स्त्री की चेतना अपने स्वतंत्र स्वर की अपेक्षा संबंधों की निरंतरता और सामाजिक स्वीकृति की ओर अधिक उन्मुख हो जाती है।

अतः पितृसत्तात्मक परिवर्तन को केवल सामाजिक संरचना में आए परिवर्तन के रूप में नहीं, बल्कि भाषा, चेतना और अचेतन मन की संरचना में हुए रूपांतरण के रूप में समझना चाहिए। वैदिक संदर्भ में जहाँ वाणी स्त्री के आत्मबोध को सक्रिय करती थी, वहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था में भाषिक सीमाएँ स्त्री के मानस को अनुकरण और मौन की ओर प्रवृत्त करती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री की वाणी में आया परिवर्तन उसके मानसिक और सामाजिक अस्तित्व में हुए व्यापक परिवर्तनों से सीधे रूप में जुड़ा हुआ है।

आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक नारीवाद और वैदिक दृष्टि : एक तुलनात्मक अध्ययन

आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक नारीवाद यह दर्शाता है कि भाषा और सामाजिक संरचनाएँ स्त्री की पहचान और उसकी वाणी को अनेक बार पुरुषकेंद्रित ढाँचे के भीतर निर्मित करती हैं, जिसके कारण स्त्री का मौन या सीमित अभिव्यक्ति ऐतिहासिक और मानसिक प्रक्रियाओं से जुड़ी मानी जाती है। इसके विपरीत वैदिक दृष्टि में स्त्री को ज्ञान-प्रक्रिया की सक्रिय सहभागी के रूप में स्वीकार किया गया है, जहाँ उसकी वाणी ज्ञान और सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है।

इस प्रकार दोनों दृष्टियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्त्री की वाणी का प्रश्न केवल सामाजिक या भाषिक नहीं, बल्कि ज्ञान, अस्तित्व और चेतना से भी संबंधित है। आधुनिक नारीवादी मनोविज्ञान और वैदिक ज्ञान परंपरा का संयुक्त अध्ययन स्त्री की पहचान और ज्ञान-सहभागिता को अधिक व्यापक और संतुलित रूप में समझने की दिशा प्रदान करता है।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्ययन में आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक नारीवाद और वैदिक ज्ञानपरंपरा के संदर्भ में स्त्री की वाणी, पहचान और ज्ञान-सहभागिता का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि के अनुसार भाषा और प्रतीकात्मक संरचनाएँ व्यक्ति के अस्तित्व को निर्मित करती हैं, और पुरुषकेंद्रित भाषिक संरचनाएँ स्त्री की अभिव्यक्ति तथा आत्मबोध को सीमित कर सकती हैं। इस कारण स्त्री की वाणी का प्रश्न उसकी पहचान और सामाजिक स्वीकृति से भी जुड़ जाता है।

इसके विपरीत वैदिक दृष्टि स्त्री को ज्ञान-प्रक्रिया की सक्रिय सहभागी के रूप में स्वीकार करती है, जहाँ उसकी वाणी ज्ञान और सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। यह तुलनात्मक अध्ययन संकेत करता है कि स्त्री की वाणी और पहचान का प्रश्न सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक सभी स्तरों से संबंधित है। अतः दोनों दृष्टियों का समन्वित अध्ययन स्त्री की चेतना और अभिव्यक्ति को अधिक व्यापक और संतुलित रूप से समझने की दिशा प्रदान करता है।

संदर्भ सूची:

- अल्तेकर, ए. एस. द पोज़िशन ऑफ वुमन इन हिंदू सिविलाइज़ेशन: फ्रॉम प्रीहिस्टोरिक टाइम्स टू द प्रेज़ेंट डे. 12वाँ संस्करण, द कल्चरल पब्लिकेशन हाउस, 2016।
- अदम्बादजी, अडेल्फ़े। "लूस इरिगरे और प्राचीन फेलोसेंट्रिक विमर्श का अस्वीकार: जेनर ह्यूमैन की पुनर्स्थापना की ओर।" अकादेमिया, 2022, https://www.academia.edu/89215228/Phallocentric_discourse_of_Antiquity_and_restoration_of_the_human_race_in_Luce_Irigaray।
- फ़ातिमा, इराम। "वैदिक काल में स्त्री की स्थिति।" इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मैनेजमेंट सोशियोलॉजी एंड ह्यूमैनिटीज (IRJMSH), खंड 7, अंक 1, 2016।
- इरिगरे, लूस। स्पेकुलम ऑफ द अदर वुमन. अनुवाद: गिलियन सी. गिल, कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985।
- कुमार, शशि प्रभा। "वुमन सेजेस ऑर ऋषिकास: वैदिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारीवाद।" जर्नल ऑफ इंडियन स्टडीज़, खंड 1, 1998।
- मेहता, आस्था। वैदिक ऋषिकाएँ: एक प्रकाशपुंज (वैदिक ऋषिकाओं की कहानियाँ). ओंकार प्रकाशन, 2025।
- पाल, भास्वती। "प्राचीन भारतीय सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति की गाथा।" 2019, रिसर्चगेट, https://www.researchgate.net/publication/333409420_The_saga_of_women's_status_in_ancient_indian_civilization।
- डिमोलिया, इन्दु। "ऋग्वेदीय ऋषिकाओं के विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता।" IJSRST, खंड 4, अंक 7, 2018, https://ijsrst.com/paper/5938.pdf।
- "वैदिक ऋषिकाएँ।" वैदिक हेरिटेज पोर्टल, https://vedicheritage.gov.in/pdf/ved_vedang_gp_46.pdf।